Dr. Sudhir Kumar Singh

Principal

Rohtas Mahila college

Sasaram

Sociology U. G. Notes

B. A. (hons.) Part 2

Paper 4th - सामाजिक शोध

Topic - शोध प्रारूप का अर्थ, परिभाषा, प्रकार एवं महत्व

प्रस्तावित सामाजिक शोध की विस्तृत कार्य योजना अथवा शोधकार्य प्रारम्भ करने के पूर्वसम्पूर्णशोध प्रक्रियाओं की एक स्पष्ट संरचना 'शोध प्रारूप' या 'शोध अभिकल्प' के रूप में जानी जातीहै। शोध प्रारूप के सम्बन्ध में यह स्पष्ट होना चाहिए कि यह शोध का को चरण नहीं हैक्योंकि शोध के जो निर्धारित या मान्य चरण हैं, उन सभी पर वास्तविक कार्य प्रारम्भ होने केपूर्व ही विस्तृत विचार होता है और तत्पश्चात् प्रत्येक चरण से सम्बन्धित विषय पर रणनीतितैय्यार की जाती है। जब सम्पूर्ण कार्य योजना विस्तृत रूप से संरचित हो जाती है तबवास्तविक शोध कार्य प्रारम्भ होता है।

शोध प्रारूप की परिभाषा

एफ.एन. करलिंगर (1964 : 275) के अनुसार, "शोध प्रारुप अनुसंधान के लिए कल्पित एकयोजना, एक संरचना तथा एक प्रणाली है, जिसका एकमात्र प्रयोजन शोध सम्बन्धी प्रश्नों काउत्तर प्राप्त करना तथा प्रसरणों का नियंत्रण करना होता है।"

पी.वी. यंग (1977 : 12-13) के अनुसार, "क्या, कहाँ, कब, कितना, किस तरीके से इत्यादि केसम्बन्ध में निर्णय लेने के लिए किया गया विचार अध्ययन की योजना या अध्ययन प्रारूप कानिर्माण करता है।"

आर.एल. एकॉफ (1953:5) के अनुसार, "निर्णय लिये जाने वाली परिस्थिति उत्पन्न होने के पूर्वही निर्णय लेने की प्रक्रिया को प्रारुप कहते हैं।"

"क्या तथ्य इकट्ठा करना है, किनसे, कैसे और कब तक इकठ्ठा करना है और प्राप्त तथ्यों कोकैसे विश्लेषित करना है कि योजना शोध प्रारुप है।"(www.ojp.usdoj.gov/BJA/evaluation/glossary)स्पष्ट है कि शोध प्रारूप

प्रस्तावित शोध की ऐसी रूपरेखा होती है, जिसे वास्तविक शोध कार्यको प्रारम्भ करने के पूर्व व्यापक रूप से सोच-समझ के पश्चात् तैय्यार किया जाता है। शोधकी प्रस्तावित रूपरेखा का निर्धारण अनेकों बिन्दुओं पर विचारोपरान्त किया जाता है। इसेसरलतम रूप में पी.वी. यंग (1977) ने शोध सम्बन्धित विविध प्रश्नों के द्वारा इस तरह स्पष्टकिया है-

अध्ययन किससे सम्बन्धित है और आँकड़ों का प्रकार जिनकी आवश्यकता है?

अध्ययन क्यों किया जा रहा है?

वांछित आँकड़े कहाँ से मिलेंगे?

कहाँ या किस क्षेत्र में अध्ययन किया जायेगा?

कब या कितना समय अध्ययन में सम्मिलित होगा?

कितनी सामग्री या कितने केसों की आवश्यकता होगी?

चुनावों के किन आधारों का प्रयोग होगा?

आँकड़ा संकलन की कौन सी प्रविधि का चुनाव किया जायेगा?

इस तरह, निर्णय लेने में जिन विविध प्रश्नों पर विचार किया जाता है जैसे क्या, कहाँ, कब,कितना, किस साधन से अध्ययन की योजना निर्धारित करते हैं। (पी.वी. यंग 1977: 12-13)न्यूयार्क यूनिवर्सिटी की फैकल्टी क्लास वेबसाट (वॉट इज सोशल रिसर्च, चैप्टर 1 : 9-10) मेंशोध प्रारूप और शोध प्रारूप बनाम पद्धति विषय पर विधिवत विचार व्यक्त किया गया है। उसेहम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं। उसके अनुसार शोध प्रारूप को भवन निर्माण से सम्बन्धित एकउदाहरण के द्वारा आसानी से समझा जा सकता है। भवन निर्माण करते समय सामग्री काआर्डर देने या प्रोजेक्ट पूर्ण होने की तिथि निर्धारित करने का को औचित्य नहीं है, जब तककि हमें यह न मालूम हो कि किस प्रकार का भवन निर्मित होना है। पहला निर्णय यह करना हैकि क्या हमें अति ऊँचे कार्यालयी भवन की, या मशीनों के निर्माण के लिए एक फैक्टरी की,एक स्कूल, एक आवासीय भवन या एक बहुखण्डीय भवन की आवश्यकता है। जब तक यहनहीं तय हो जाता हम एक योजना का खाका तैय्यार नहीं कर सकते, कार्य योजना तैय्यार नहींकर सकते या सामग्री का आर्डर नहीं दे सकते हैं। इसी तरह से, सामाजिक अनुसन्धान कोप्रारूप या अभिकल्प की आवश्यकता होती है या तथ्य संकलन के पूर्व या विश्लेषण शुरू करनेके पूर्व एक संरचना की आवश्यकता होती है। एक शोध प्रारूप मात्र एक कार्य योजना (वर्कप्लान) नहीं है। यह प्रोजेक्ट को पूर्ण करने के लिए क्या करना है कि कार्य योजना का विस्तृतविवरण है। शोध प्रारूप का प्रकार्य यह सुनिश्चित करना है कि प्राप्त साक्ष्य हमें प्रारम्भिक प्रश्नोंके यथासम्भव सुस्पष्ट उत्तर देने में सक्षम बनाये।

कार्य योजना बनाने के पूर्व या सामग्री आर्डर करने के पूर्व भवन निर्माता या वास्तुविद् कोप्रथमत: यह निर्धारित करना जरूरी है कि किस प्रकार के भवन की जरूरत है, इसका उपयोगक्या होगा और उसमें रहने वाले लोगों की क्या आवश्यकताएं हैं। कार्य योजना इससे निकलतीहै। इसी तरह से, सामाजिक अनुसन्धान में निदर्शन, तथ्य संकलन की पद्धति (उदाहरण के लिएप्रश्नावली, अवलोकन, दस्तावेज विश्लेषण) प्रश्नों के प्रारूप के मुद्दे सभी इस विषय के कि 'मुझेकौन से साक्ष्य इकट्ठे करने हैं', के सहायक/पूरक होते हैं।

गेराल्ड आर. लेस्ली (1994 : 25-26) का कहना है कि, "शोध प्रारूप ब्लू प्रिन्ट है, जोपरिवर्त्यों को पहचानता और तथ्यों को एकत्र करने तथा उनका विवरण देने के लिए की जानेवाली कार्य प्रणालियों को अभिव्यक्त करता है।" शोध प्रारुप को अत्यन्त विस्तार से समझाते हुएसौमेन्द्र पटनायक (2006 : 31) ने लिखा है कि, "शोध प्रारुप एक प्रकार की रूपरेखा है, जिसेआपको शोध के वास्तविक क्रियान्वयन से पहले तैयार करना है। योजनाबद्ध रूप से तैयार एकखाका होता है जो उस रीति को बतलाता है जिसमें आपने अपने शोध की कार्य योजना तैयारकी है। आपके पास अपने शोध कार्य पर दो पहलुओं से विचार करने का विकल्प है, नामत:अनुभवजन्य पहलू और विश्लेषणपरक पहलू। ये दोनों ही पहलू एक साथ आपके मस्तिष्क मेंरहते हैं, जबकि व्यवहार में आपको अपना शोध कार्य दो चरणों में नियोजित करना है : एकसामग्री संग्रहण का चरण और दूसरा उस सामग्री के विश्लेषण का चरण। आपकी मनोगतसैद्धान्तिक उन्मुखता और अवधारणात्मक प्रतिदर्शताएँ आपको इस शोध सामग्री के स्वरूप कोनिर्धारित करने में मदद करती हैं जो आपको एकत्र करनी है और कुछ हद तक यह समझने मेंभी कि आपको उन्हें कैसे एकत्र करना है। तदोपरान्त, अपनी सामग्री का विश्लेषण करते समयफिर से आमतौर पर समाजिक यथार्थ सम्बन्धी सैद्धान्तिक और अवधारणात्मक समझ के सहारेआपको अपने शोध परिणामों को स्पष्ट करने में और प्रस्तुत करने के वास्ते शोध सामग्री कोवर्गीकृत करने में और विन्यास विशेष को पहचानने में दिशानिर्देशन मिलता है।"

यंग (1977 :131) का कहना है कि, "जब एक सामान्य वैज्ञानिक मॉडल को विविध कार्यविधियोंमें परिणत किया जाता है तो शोध प्रारुप की उत्पत्ति होती है। शोध प्रारुप उपलब्ध समय, कर्मशक्ति एवं धन, तथ्यों की उपलब्धता उस सीमा तक जहाँ तक यह वांछित या सम्भव हो उनलोगों एवं सामाजिक संगठनों पर थोपना जो तथ्य उपलब्ध करायेंगे, के अनुरूप होना चाहिए।".ए. सचमैन (1954 :254) का कहना है कि, "एकल या 'सही' प्रारुप जैसा कुछ नही हैशोध प्रारुप सामाजिक शोध में आने वाले बहुत से व्यावहारिक विचारों के कारण आदेशितसमझौते का प्रतिनिधित्व करता

है। . . . . (साथ हीद्ध अलग-अलग कार्यकर्त्ता अलग-अलगप्रारुप अपनी पद्धतिशास्त्रीय एवं सैद्धान्तिक प्रतिस्थापनाओं के पक्ष में लेकर आते हैं . . . . एकशोध प्रारुप विचलन का अनुसरण किए बिना को उच्च विशिष्ट योजना नही है, अपितु सहीदिशा में रखने के लिए मार्गदर्शक स्तम्भों की श्रेणी है।" दूसरे शब्दों में, एक शोध प्रारुप कामचलाऊ होता है। अध्ययन जैसे-जैसे प्रगति करता है, नये पक्ष, न दशाएं और तथ्यों में नयीसम्बन्धित कड़ियाँ प्रकाश में आती हैं, और परिस्थितियों की माँग के अनुसार यह आवश्यक होताहै कि योजना परिवर्तित कर दी जाये। योजना का लचीला होना जरूरी होता है। लचीलेपन काअभाव सम्पूर्ण अध्ययन की उपयोगिता को समाप्त कर सकता है।

शोध प्रारुप के उद्देश्य

मैनहाम (1977 : 142) के अनुसार शोध प्रारुप के पाँच उद्देश्य होते हैं-

अपनी उपकल्पना का समर्थन करने और वैकल्पिक उपकल्पनाओं का खण्डन करने हेतुपर्याप्त साक्ष्य इकठ्ठा करना।

एक ऐसा शोध करना जिसे शोध की विषयवस्तु और शोध कार्यविधि की दृष्टि से दोहरायाजा सके।

परिवत्र्यों के मध्य सहसम्बन्धों को इस तरह से जाँचने में सक्षम होना जिससे सहसम्बन्धज्ञात हो सके।

एक पूर्ण विकसित शोध परियोजना की भावी योजनाओं को चलाने के लिए एक मार्गदश्र्ाीअध्ययन की आवश्यकता को दिखाना।

शोध सामग्रियों के चयन की उचित तकनीकों के चुनाव द्वारा समय और साधनों के अपव्ययको रोकने में सक्षम होना।

एक अन्य विद्वान ने शोध प्रारूप के उद्देश्यों का उल्लेख किया है-

शोध विषय को परिभाषित, स्पष्ट एवं व्याख्या करना।

दूसरों को शोध क्षेत्र स्पष्ट करना।

शोध की सीमा एवं परिधि प्रदान करना।

शोध के सम्पूर्ण परिदृश्य को प्रदान करना।

तरीकों (modes) और परिणामों को बतलाना

समय और संसाधनों की सुनिश्चितता।

शोध प्रारूप के घटक अंग

शोध प्रारुप के उद्देश्यों से यह स्पष्ट है कि, यह शोध की वह युक्तिपूर्ण योजना होती है, जिसकेअन्तर्गत विविध परस्पर सम्बन्धित अंग होते हैं, जिनके द्वारा शोध सफलतापूर्वक सम्पादित होताहै। पी.वी. यंग (1977 :13) ने शोध प्रारुप के अन्तर्गत निम्नांकित घटक अंगों का उल्लेखकिया है जो अन्तर्सम्बन्धित होते हैं तथा परस्पर बहिष्कृत नही होते हैं-

प्राप्त किये जाने वाले सूचनाओं के स्रोत,

अध्ययन की प्रकृति,

अध्ययन के उद्देश्य,

अध्ययन का सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्श,

अध्ययन द्वारा समाहित भौगोलिक क्षेत्र,

लगने वाले समय के काल का निर्धारण,

अध्ययन के आयाम,

आँकड़ा संकलन का आधार,

आँकड़ा संकलन हेतु प्रयोग की जाने वाली प्रविधियाँ।

उपरोक्त शोध प्रारूप के अन्तर्सम्बन्धित और परस्पर समावेषित अंगों की संक्षिप्त विवेचना यहाँआवश्यक प्रतीत होती है।

सूचना के स्रोत

को भी शोध कार्य सूचना के अनेकों स्रोत पर निर्भर करता है। मोटेतौर पर सूचना के इन स्रोतों को हम दो भागों में रख सकते हैं। (i) प्राथमिक स्रोत और (ii) द्वैतियक स्रोत।

प्राथमिक स्रोत वे हैं जिनका शोधकर्ता पहली बार स्वयं प्रयोग कर रहा है,यानि शोधकर्ता ने अपने अध्ययन क्षेत्र में जा कर जिस तकनीक या उपकरण अथवा विधि काप्रयोग कर मौलिक तथ्य प्राप्त किया है, वह प्राथमिक तथ्य कहलाता है। वही दूसरों के द्वारा जोसूचना प्रकाशित या अप्रकाशित अथवा अन्य तरीकों से सर्व उपलब्ध हो, और जिसका उपयोगशोधकर्ता कर रहा हो वह द्वैतियक सूचना का स्रोत होता है। उल्लेखनीय है कि बहुधा द्वैतियकसूचना का स्रोत एक समय में किसी शोधकर्ता का प्राथमिक सूचना स्रोत होता है।अर्थपूर्ण तथ्यों की खोज में लगे समाजशास्त्री उस प्रत्येक सूचना के स्रोत का उपयोग करने मेंहिचकिचाहट महसूस नहीं करते हैं जिनसे भी शोध कार्य में जरा भी प्रमाण या सहायता मिलनेकी संभावना होती है। सूचना के इन स्रोत को विधिक विद्वानों ने अलग-अलग प्रकारों मेंरखकर विश्लेषित किया है। बैगले (1938 : 202) ने सूचना के दो प्रमुख स्रोत का उल्लेख किया है- (i) प्राथमिक स्रोतऔर (ii) द्वैतियक स्रोत।

पी.वी. यंग (1977 : 136) का कहना है कि सामान्यत: सूचना के स्रोत दो होते हैं- (i) प्रलेखीय और (ii) क्षेत्रीय स्रोत। सूचना के प्रलेखीय (डॉक्यूमेन्टरी) स्रोत वे होते हैं, जो किप्रकाशित और अप्रकाशित प्रलेखों, रिपोर्टों, सांख्यिकी, पाण्डुलिपियों, पत्रों, डायरियों इत्यादि मेंनिहित होते हैं। दूसरी तरफ, क्षेत्रीय स्रोत के अन्तर्गत वे जीवित लोग सम्मिलित होते हैं, जिन्हेंउस विषय का पर्याप्त ज्ञान होता है या जिनका सामाजिक दशाओं और परिवर्तनों के लम्बे समयतक का घनिष्ठ सम्पर्क होता है। ये लोग न केवल वर्तमान घटनाओं को विश्लेषित करने कीस्थिति में होते हैं अपितु सामाजिक प्रक्रियाओं की अवलोकनीय प्रवृत्तियों और सार्थक मील कापत्थर को बताने की स्थिति में भी होते हैं।

लुण्डबर्ग (1951 : 122) ने सूचनाओं के दो स्रोत का उल्लेख किया है- (i) ऐतिहासिक स्रोत, और (ii) क्षेत्रीय स्रोत।

ऐतिहासिक स्रोत के अन्तर्गत प्रलेख, विविध कागजातों एवं शिलालेखों, भूर्तत्त्वीय स्तरों,उत्खनन से प्राप्त वस्तुओं को सम्मिलित करते हुए लुण्डबर्ग (1951:122) का कहना है कि,"ऐतिहासिक स्रोत उन अभिलेखों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो भूतकाल की घटनाएं अपनेपीछे छोड़ ग हैं, जिनकों की उन साधनों द्वारा सुरक्षित रखा गया है जो मनुष्य से परेहैं।" उदाहरण के लिए हम उल्लेख कर सकते हैं उन विविध स्थानों का जहाँ पुरातत्त्वीयउत्खनन के पश्चात तत्कालीन समाज की विविध सूचनाएँ प्राप्त हु है या विविधपुरातित्त्वक संग्रहालयों में सुरक्षित रखे दस्तावेजों (सरकारी) एवं गैर सरकारी) काजिनका आज भी शोधकर्ता अपने शोध कार्यों में व्यापक रूप से प्रयोग करते हैं। क्षेत्रीयस्रोत के

अन्तर्गत लुण्डबर्ग ने जीवित मनुष्यों से प्राप्त विशिष्ट सूचनाओं तथा क्रियाशीलव्यवहारों के प्रत्यक्ष अवलोकन को सम्मिलित किया है। उपरोक्त समस्त विवरण स्पष्टकरता है कि सूचनाओं के क स्रोत होते हैं, इन समस्त स्रोत को विद्वानों नेअपनी-अपनी तरह से विश्लेषित किया है। जो कुछ भी हो सूचनाओं के स्रोत जिन्हेंप्रयोग में लाया जाता है, शोध प्रारूप का अंग होते हैं।

अध्ययन की प्रकृति –

पी.वी. यंग (1977 : 14) का कहना है कि, "अध्ययन की विशिष्टप्रकृति का निर्धारण शुरू में और ठीक ठीक कर लेना चाहिए, विशेषकर जब सीमित समयऔर कर्मशक्ति गलत शुरूआत को रोक रहे हों। शोध केस की प्रकृति पर ही अपने कोकेन्द्रित करते हुए उन्होंने मटिल्डा वाइट रिले (1963 : 3-31) की पुस्तक में विविधविद्वानों के अध्ययनों के उल्लेख का उदाहरण देते हुए उन्होंने इस विषय को स्पष्ट कियाहै। क्या यह अध्ययन एक व्यक्ति से सम्बन्धित है (जैसा शॉ की 'दी जैक रोलर' में है)क लोगों से सम्बन्धित है (विलियम वाट की पुस्तक 'स्ट्रीट कार्नर सोसायटी' केविश्लेषण में डॉक, माक और डैनी) या क्या अध्ययन किसी छोटे समूह पर संकेन्द्रित है(जैसा कि पॉल हैरे एवं अन्य के अध्ययन 'स्माल ग्रुप' या बहुत अधिक केसों पर संकेन्द्रितहै, जैसा कि यौन व्यवहार सम्बन्धित किन्से का अध्ययन। इस अनुभव के साथ की प्रत्येकशोध अध्ययन जटिल होता है, उसकी विशिष्ट प्रकृति का यथाशीघ्र निर्धारण कर लेनाचाहिए।

शोध अध्ययन का उद्देश्य –

अध्ययन के उद्देश्यों का निर्धारण शोध प्रारूप कामहत्वपूर्ण अंग है। अध्ययन की प्रकृति और प्राप्त किये जाने वाले लक्ष्यों के अनुसारउद्देश्य भिन्न-भिन्न होते हैं। कुछ शोध अध्ययनों का उद्देश्य विवरणात्मक तथ्य, याव्याख्यात्मक तथ्य या तथ्य जिनसे सैद्धान्तिक रचना की व्युत्पत्ति हो, या तथ्य जोप्रशासकीय परिवर्तन या तुलना को बढ़ावा दे, को इकट्ठा करना होता है।

अध्ययन का जो भी उद्देश्य हो अपने शोध की प्रकृति के अनुरूप शोध कार्य की तैय्यारीआवश्यक है। शोध उद्देश्य के अनुरूप उपकल्पना का निर्माण और उसके परीक्षण कीतैय्यारी या शोध प्रश्नों का निर्माण किया जाता है।

सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थिति –

क्षेत्रीय अध्ययनों में उत्तरदाताओं की सामाजिकसांस्कृतिक परिस्थिति को जानना आवश्यक होता है। हम सभी जानते हैं कि स्थानीयआदर्श भिन्न-भिन्न होते हैं। इनमें इतनी ज्यादा भिन्नत सम्भव है जिसकी हम कल्पना भीनहीं कर सकते हैं। व्यवहार प्रतिरूपों को समझने के लिए स्थानीय आदर्शों को जाननाजरूरी है। पी.वी. यंग (1977 : 15) ने इस सन्दर्भ में उचित ही लिखा है कि "एक व्यक्तिका निवास स्थान (प्राकृतिक वास) उसके जीवन के एक भाग से इतना घनिष्ठ होता हैकि उसकी उपेक्षा करने का मतलब शून्य में अध्ययन करना है।" उनका यह भी सुझावमहत्त्वपूर्ण है कि, "प्रत्येक सामाजिक-सांस्कृतिक क्षेत्र का अध्ययन उसके प्राकृतिक औरभौगोलिक पक्ष के सन्दर्भ में भी किया जाना चाहिए।"

सामाजिक-कालिक सन्दर्भ –

यह निर्विवाद सत्य है कि किसी व्यक्ति पर, समुदाय पर,समाज पर ऐतिहासिक काल विशेष का प्रभाव व्यापक रूप से पड़ता है। किसी देश के कुछनिश्चित ऐतिहासिक काल को ही यहां सामाजिक -कालिक सन्दर्भ शब्द से सम्बोधित किया जारहा है। क बार भारतीय अध्ययनों में औपनिवेशिक काल के प्रभावों का उल्लेख इसी काउदाहरण माना जा सकता है। अण्डमान-निकोबार द्वीप समूहों में बन्दी उपनिवेश काल याभारतवर्ष में वैदिक काल, मुगल काल इत्यादि कुछ विशिष्ट ऐतिहासिक कालों का समाज परप्रभाव से हम सभी परिचित हैं। इसलिए व्यक्ति को उसके सामाजिक-कालिक सन्दर्भ यानिसमय और स्थान के ऐतिहासिक विन्यास में देखा जाना चाहिए।

अध्ययन के आयाम और निदर्शन कार्यविधि –

सामाजिक शोध में अक्सर यह सम्भव नहींहोता है कि सम्पूर्ण समग्र से प्राथमिक तथ्य संकलन का कार्य किया जाये। ऐसी परिस्थिति मेंसमग्र की कुछ इकायों का वैज्ञानिक आधार पर चयन कर लिया जाता है और तथ्य संकलनकी उपयुक्त विधि के द्वारा उनसे प्राथमिक तथ्य इकट्ठे कर लिये जाते हैं। ये कुछ चुनी हुइकायां ही निदर्शन कहलाती हैं। अच्छे निदर्शन को सम्पूर्ण समग्र का प्रतिनिधित्व करना चाहिएताकि प्राप्त सूचनायें विश्वसनीय हों तथा सम्पूर्ण समग्र का प्रतिनिधित्व कर सकें (यद्यपि निदर्शनके कुछ प्रकारों में इसकी कुछ कम संभावना होती है)।इकायों का चयन निष्पक्ष रूप से पूर्वाग्रह रहित होकर करना चाहिए। सम्पूर्ण समूह जिसमें सेनिदर्शन लिया जाता है 'पापुलेशन', 'यूनिवर्स' (समग्र) या 'सप्ला' के नाम से जाना जाता है।निदर्शन के क प्रकार होते हैं। मोटे तौर पर निदर्शन को दो प्रकारों- संभावनात्मक औरअसंभावनात्मक में रखा जाता है। जब समग्र की प्रत्येक इका के चुने जाने की समानसम्भावना हो तो उसे संभावनात्मक निदर्शन कहते हैं और यदि ऐसी समान संभावना न हो तोउसे असंभावनात्मक निदर्शन कहते हैं।संभावनात्मक और

असंभावनात्मक निदर्शन के अन्तर्गत आने वाले विविध प्रकारों को प्रस्तुत किया जा सकता है-

निदर्शन

संभावनात्मक निदर्शन

असंभावनात्मक निदर्शन

(क) दैव निदर्शन (क) सुविधानुसार निदर्शन(या देखा और साक्षात्कार लियानिदर्शन)

(ख) क्रमबद्ध दैव निदर्शन (ख) सोद्देशपूर्ण निदर्शन (नियत मात्रा)

(ग) स्तरीत दैव निदर्शन (ग) कोटा निदर्शन

(घ) समूह दैव निदर्शन (घ) स्नोबाल निदर्शन

(ड़) स्वनिर्णय निदर्शन

निदर्शन, इसके प्रकार, निदर्शन आकार, गुण एवं सीमाओं पर विस्तृत चर्चा अन्यत्र अध्याय में कीग है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि शोध प्रारूप को बनाते समय निदर्शन तथा उसके आकारपर उपलब्ध समय और साधनों की सीमाओं के अन्तर्गत व्यापक सोच-विचार किया जाता है।अध्ययन के उद्देश्यों के अनुसार तथा समग्र की संख्या तथा विशेषताओं के अनुसार निदर्शन काप्रकार तथा आकार अलग-अलग होता है। उत्तम एवं विश्वसनीय परिणाम प्राप्त करने के लिएयथेष्ट एवं उत्तम निदर्शन का होना जरूरी होता है।

सामाजिक शोध कार्यों में सबसे जटिल प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि निदर्शन का आकार क्याहोगा? कितने लोगों को उत्तरदाताओं के रूप में चयनित किया जायेगा? सम्पूर्ण समग्र काअध्ययन अक्सर समय और साधनों की सीमाओं के चलते सम्भव नहीं होता है। समुचित निदर्शनके निर्धारण की समस्या एक जटिल समस्या है। यद्यपि क विद्वानों ने इस सन्दर्भ मेंअपने-अपने सुझावों को दिया है तथा सांख्यिकीविदों ने तो इसका सूत्र भी बना रखा है, परन्तुइसके बावजूद भी समस्या किसी न किसी रूप में बनी ही रहती है।

पी.वी. यंग (1977 : 17)यह मानती हैं कि, "एक परिपक्व शोधकर्ता द्वारा भी इस प्रश्न के उत्तर को देना कठिन है किकितने केसों की जरूरत है।"पी.वी. यंग (1977 :17) ने अपनी पुस्तक में सांख्यिकीविद् मारग्रेट हगुड़ (1953) द्वारा सुझायेनिदर्शन के आधारों का उल्लेख किया है। हगुड़

(1953 : 272) ने निदर्शन चयन के निम्नांकितसुझाव दिए हैं- "(1) निदर्शन को समग्र का प्रतिनिधित्व करना चाहिए ;अर्थात् उसे पूर्वाग्रहरहित होना चाहिएद्ध; (2) विश्वसनीय परिणाम प्राप्त करने के लिए निदर्शन पर्याप्त आकार काहोना चाहिए (अर्थात् दोष की विशिष्ट सीमा तक जैसे मापा जाय);(3) निदर्शन इस तरह सेसंरचित किया जाये कि कुशल हो (अर्थात वैकल्पिक प्रारूप की तुलना में)।"

तथ्य संकलन के लिए प्रयुक्त तकनीक –

शोध प्रारूप का एक महत्वपूर्ण अंग तथ्यसंकलन की तकनीक है। शोध कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व ही इस महत्वपूर्ण विषय पर शोध कीप्रकृति और उत्तरदाताओं की विशेषताओं के परिपेर्क्ष्य में व्यापक सोच-विचार के पश्चात् यहनिर्णय लिया जाता है कि प्राथमिक तथ्य संकलन का कार्य किस प्रविधि के द्वारा किया जायेगा।उल्लेखनीय है कि तथ्य संकलन की विविध प्रविधियां हैं- जैसे अवलोकन, साक्षात्कार,प्रश्नावली, अनुसूची, वैयक्तिक अध्ययन (केस स्टडी) इत्यादि। इन सभी प्रविधियों कीअपनी-अपनी विशेषताएँ तथा सीमाएँ हैं। तथ्य संकलन की सही तकनीक का प्रयोग शोध कीगुणवत्ता, विश्वसनीयता तथा वैज्ञानिकता निर्धारित करता है। उल्लेखनीय है कि इन प्रविधियोंका प्रयोग प्रत्येक समाज एवं उत्तरदाताओं पर नहीं किया जा सकता है।

शोध प्रारूप का महत्व

उपरोक्त विस्तृत व्याख्या से शोध प्रारूप के महत्व का स्पष्ट अनुमान हो जाता है। ब्लैक औरचैम्पियन (1976=76.77) के शब्दों में कहा जाये तो-

शोध प्रारुप से शोध कार्य को चलाने के लिए एक रूप रेखा तैयार हो जाती है।

शोध प्रारूप से शोध की सीमा और कार्य क्षेत्र परिभाषित होता है।

शोध प्रारूप से शोधकर्ता को शोध को आगे बढ़ाने वाली प्रक्रिया में आने वाली समस्याओंका पूर्वानुमान लगाने का अवसर प्राप्त होता है।

शोध प्रारूप बनाम तथ्य संकलन की पद्धति

शोध प्रारूप और तथ्य संकलन की पद्धतियों के सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि शोध प्रारूप आँकड़ेया तथ्य इकट्ठे किये जाने वाली पद्धति से अलग होता है। "यह देखना असामान्य नहीं है किशोध प्रारूप

को तथ्य संकलन के तरीके के रूप में देखा जाता है बजाये इसके कि जाँच कीतार्किक संरचना के।"

शोध प्रारूप और तथ्य संकलन की पद्धति में समानता का भ्रम होने का कारण कुछ विशेषप्रारूपों को किसी विशेष तथ्य संकलन की पद्धति से जोड़कर देखना है। उदाहरण के लिएवैयक्तिक अध्ययनों को सहभागी अवलोकन और क्रास सेक्शनल सर्वे को प्रश्नावलियों सेसमीकृत किया जाता है। वास्तविकता यह है कि किसी भी प्रारूप के लिए तथ्य किसी भी तथ्यसंकलन की पद्धति से इकट्ठा किया जा सकता है। विश्वसनीय तथ्य महत्वपूर्ण होते हैं न किउन्हें इकट्ठा करने का तरीका। तथ्य कैसे इकट्ठा किया गया, यह प्रारूप की तार्किकता केलिए अप्रासंगिक/असम्बद्ध है।

न्यूयार्क यूनिवर्सिटी की फैकल्टी क्लास वेबसाइट (पृ. 10) में 'शोध प्रारूप क्या है?' अध्याय केअन्तर्गत शोध प्रारूप और तथ्य संकलन की पद्धतियों में सम्बन्ध को दर्शाया गया-

इसी तरह से प्रारुपों को अक्सर गुणात्मक और गणनात्मक शोध पद्धतियों से जोड़ा जाता है।सामाजिक सर्वेक्षण और प्रयोगों को अक्सर गुणात्मक शोध के मुख्य उदाहरणों के रुप में देखाजाता है और उनका मूल्यांकन सांख्यिकीय, गुणात्मक शोध पद्धतियों और विश्लेषण की क्षमताऔर कमजोरियों के विरुद्ध किया जाता है। दूसरी तरफ वैयक्तिक अध्ययन को अक्सर गुणात्मकशोध के मुख्य उदाहरण के रूप में देखा जाता है- जोकि तथ्यों के विवेचनात्मक उपागम काप्रयोग करता है, 'चीजों' का अध्ययन उनके सन्दर्भ के अन्तर्गत करता है और लोग अपनीपरिस्थितियों का जो वस्तुगत अर्थ लगाते हैं को विचार करता है। किसी विशिष्ट शोध प्रारुप कोगुणात्मक या गणनात्मक पद्धति से जोड़ना भ्रान्तिपूर्ण या गलत है। वैयक्तिक अध्ययन प्रारुप कीएक सम्मानित हस्ती यिन (1993) ने वैयक्तिक अध्ययन के लिए गुणात्मक/गणनात्मक विभेदकी अप्रासंगिकता पर जोर दिया है। उनका कहना है कि वैयक्तिक अध्ययन पद्धति तथ्यसंकलन के किसी विशिष्ट स्वरूप को अन्तर्निहित नहीं करती है। वह गुणात्मक या गणनात्मकको भी हो सकती है

न्यूयार्क यूनिवर्सिटी की फैकल्टी क्लास वेबसाइट (पृ. 11.12) में 'शोध प्रारूप क्या है?' अध्यायके अन्तर्गत व्याख्या में संशयवादी उपागम को अपनाने की आवश्यकता का उल्लेख करते हुएलिखा गया है कि, "शोध प्रारुप की आवश्यकता शोध के संशयवादी उपागम के तने और इसदृष्टिकोण से कि वैज्ञानिक ज्ञान हमेशा अस्थायी होता है, से निकलती है। शोध प्रारुप काउद्देश्य शोध के बहु

साक्ष्यों की अस्पष्टता को कम करना होता है।”

हम हमेशा कुछ साक्ष्यों को लगभग सभी सिद्धान्तों के साथ निरन्तर पा सकते हैं। जबकि हमेंसाक्ष्यों के प्रति संशयपूर्ण होना चाहिए और बजाये उन साक्ष्यों को प्राप्त करना जो हमारेसिद्धान्त के साथ निरन्तर उपलब्ध हों। हमें ऐसे साक्ष्यों को प्राप्त करना चाहिए जो सिद्धान्त केअकाट्य परीक्षण को प्रदान करते हों।

शोध प्रारुप निर्मित करते समय यह आवश्यक है कि हमें आवश्यक साक्ष्यों के प्रकारों कोचिन्हित कर लेना चाहिए जिससे कि शोध प्रश्नों का उत्तर विश्वासोंत्पादक हो। इसका तात्पर्ययह है कि हमें मात्र उन साक्ष्यों को इकट्ठा नहीं करना चाहिए जो किसी विशिष्ट सिद्धान्त याव्याख्या के साथ लगातार बने हुए हों। शोध इस प्रकार से संरचित किया जाना चाहिए किउससे साक्ष्य वैकल्पिक प्रतिद्वन्दी व्याख्या दें और हमें यह चिन्हित करने में सक्षम बनाये किकौन सी प्रतिस्पर्द्धी व्याख्या आनुभविक रूप से ज्यादा अकाट्य है। इसका यह भी तात्पर्य है किहमें अपने प्रिय सिद्धान्त के समर्थन वाले साक्ष्यों को ही मात्र नहीं देखना चाहिए। हमें उन

साक्ष्यों को भी देखना चाहिए जिनमें यह क्षमता हो कि वे हमारी वरीयतापूर्ण व्याख्या को नकारसकें।

शोध प्रारुप के प्रकार

शोध प्रारुपों के क प्रकार होते हैं। विविध विद्वानों ने शोध प्रारुपों के कुछ तो एक समान औरकुछ अलग प्रकार के प्रकारों का उल्लेख किया है। उदाहरण के लिए सुसन कैरोल (2010:1)ने शोध प्रारुप के आठ प्रकारों का उल्लेख किया है। ये हैं-

ऐतिहासिक शोध प्रारुप (Historical Research Design)

वैयक्तिक और क्षेत्र शोध प्रारुप (Case and Field Research Design)

विवरणात्मक या सर्वेक्षण शोध प्रारुप (Descriptive or Survey Research Design)

सह सम्बन्धात्मक या प्रत्याशित शोध प्रारुप (Correlational or Prospective ResearchDesign)

कारणात्मक, तुलनात्मक या एक्स पोस्ट फैक्टों शोध प्रारुप (Causal Comparative or Ex-Post Facto Research Design)

विकासात्मक या समय श्रेणी शोध प्रारुप (Developmental or Time Series ResearchDesign)

प्रयोगात्मक शोध प्रारुप (Experimental Research Design)

अर्द्ध प्रयोगात्मक शोध प्रारुप (Quasi Experimental Research Design)

न्यूयार्क यूनिवर्सिटी की फैकल्टी क्लास वेबसाइट (2010 : 10) में 'शोध प्रारूप क्या है?' अध्यायके अन्तर्गत चार प्रकार के शोध प्रारुपों का उल्लेख किया गया है-

प्रयोगात्मक (Experimental)

वैयक्तिक अध्ययन (Case Study)

अनुलम्ब प्रारूप (Longitudinal)

अनुप्रस्थ काट प्रारुप (Cross-Sectional Design)

कुछ विद्वानों ने अनेकों प्रकारों का उल्लेख किया है। जो कुछ भी हो मोटे तौर पर शोध प्रारुपोंको चार महत्वपूर्ण प्रकारों में विभक्त किया जा सकता है-

विवरणात्मक प्रारुप या वर्णनात्मक शोध प्रारुप।

व्याख्यात्मक प्रारुप

अनवेषणात्मक प्रारुप, और

प्रयोगात्मक प्रारुप

किसी विशिष्ट प्रारूप का चयन शोध की प्रकृति पर मुख्यत: निर्भर करता है। कौन सी सूचनाचाहिए, कितनी विश्वसनीय सूचना चाहिए, प्रारूप की उपयुक्तता क्या है, लागत कितनी आयेगी,इत्यादि

कारकों पर भी प्रारूप चयन निर्भर करता है।

विवरणात्मक या वर्णनात्मक शोध प्रारूप

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है इस प्रारुप में अध्ययन विषय़ के सम्बन्ध में प्राप्त सभी प्राथमिकतथ्यों का यथावत् विवरण प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रारुप का मुख्य उद्देश्य अध्ययन की जारही इका, संस्था, घटना, समुदाय या समाज इत्यादि से सम्बन्धित पक्षों का हूबहू वर्णन कियाजाता है। यह प्रारूप वैसे तो अत्यन्त सरल लगता है किन्तु यह दृढ़ एवं अलचीला होता हैइसमें विशेष सावधानी अपेक्षित होती है। इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए किनिदर्शन पर्याप्त एवं प्रतिनिधित्वपूर्ण हो। प्राथमिक तथ्य संकलन की प्रविधि सटीक हो तथाप्राथमिक तथ्य संकलन में किसी भी प्रकार से पूर्वाग्रह या मिथ्या झुकाव न आने पाये। अध्ययनसमस्या के विषय में व्यापक तथ्यों को इकठ्ठा किया जाता है, इसलिए ऐसी सतर्कता बरतनीचाहिए कि अनुपयोगी एवं अनावश्यक तथ्यों का संकलन न होने पाये। अध्ययन पूर्ण एवं यथार्थहो और अध्ययन समस्या का वास्तविक चित्रण हो इसके लिए विश्वसनीय तथ्यों का होनानितान्त आवश्यक है।

वर्णनात्मक शोध का उद्देश्य मात्र अध्ययन समस्या का विवरण प्रस्तुत करना होता है। इसमेंनवीन तथ्यों की खोज या कार्य-कारण व्याख्या पर जोर नहीं दिया जाता है। इस प्रारुप मेंकिसी प्रकार करके प्रयोग भी नही किए जाते हैं। इसमें अधिकांशत: सम्भावित निदर्शन का हीप्रयोग किया जाता है। इसमें तथ्यों के विश्लेषण में क्लिष्ट सांख्यिकीय विधियों का भी प्रयोगसामान्यत: नहीं किया जाता है।

इसमें शोध विषय के बारे में शोधकर्ता को अपेक्षाकृत यथेष्ट जानकारी रहती है इसलिए वहशोध संचालन सम्बन्धी निर्णयों को पहले ही निर्धारित कर लेता है। वर्णनात्मक शोध प्रारूप केअलग से को चरण नही होते हैं। सामान्यत: सामाजिक अनुसंधान के जो चरण हैं, उन्हीं काइसमें पालन किया जाता है। सम्पूर्ण एकत्रित प्राथमिक सामग्री के आधार पर ही अध्ययनसम्बन्धित निष्कर्ष निकाले जाते हैं एवं आवश्यकतानुसार सामान्यीकरण प्रस्तुत किये जाने काप्रयास किया जाता है।

व्याख्यात्मक शोध प्रारूप –

शोध समस्या की कारण सहित व्याख्या करने वाला प्रारूप व्याख्यात्मक शोध प्रारुप कहलाताहै।

व्याख्यात्मक शोध प्रारुप की प्रकृति प्राकृतिक विज्ञानों की प्रकृति के समान ही होती है,जिसमें किसी भी वस्तु, घटना या परिस्थिति का विश्लेषण ठोस कारणों के आधार पर कियाजाता है। सामाजिक तथ्यों की कार्य-कारण व्याख्या यह प्रारूप करता है। इस प्रारुप में विविधउपकल्पनाओं का परीक्षण किया जाता है तथा परिवत्र्यों में सम्बन्ध और सहसम्बन्ध ढूढ़ने काप्रयास किया जाता है।

अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप –

जब सामाजिक अनुसंधान का मुख्य उद्देश्य अध्ययन समस्या के सम्बन्ध में नवीन तथ्यों कोउद्घाटित करना हो तो इस प्रारुप का प्रयोग किया जाता है। इसमें अध्ययन समस्या केवास्तविक कारकों एवं तथ्यों का पता नही होता है। अध्ययन के द्वारा उनका पता लगाया जाताहै। चूँकि इसमें कुछ 'नया' खोजा जाता है इसलिए इसे अन्वेषणात्मक शोध प्रारुप कहा जाताहै। इस प्रारूप द्वारा सिद्धान्त का निर्माण होता है।34कभी-कभी अन्वेषणात्मक और व्याख्यात्मक शोध प्रारुप को एक ही मान लिया जाता है। कविद्वानों ने तो व्याख्यात्मक शोध प्रारुप का उल्लेख तक नहीं किया है। सूक्ष्म दृष्टि से देखाजाये तो यह कहा जा सकता है कि जिस सामाजिक शोध में कार्य- कारण सम्बन्धों पर बलदेने की कोशिश की जाती है, वह व्याख्यात्मक शोध प्रारुप के अन्तर्गत आता है, और जिसमेंनवीन तथ्यों या कारणों द्वारा विषय को स्पष्ट किया जाता है, उसे अन्वेषणात्मक शोध प्रारुप केअन्तर्गत रखते हैं। इसमें शोधकर्ता को अध्ययन विषय के बारे में सूचना नही रहती है। द्वैतियकस्रोतों के द्वारा भी वह उसके विषय में सीमित ज्ञान ही प्राप्त कर पाता है। अज्ञात तथ्यों कीखोज करने के कारण या विषय के सम्बन्ध में अपूर्ण ज्ञान रखने के कारण इस प्रकार के शोधप्रारुप में सामान्यत: उपकल्पनाएँ निर्मित नहीं की जाती हैं। उपकल्पनाओं के स्थान पर शोधप्रश्नों का निर्माण किया जाता है और उन्हीं शोध प्रश्नों के उत्तरों की खोज द्वारा शोध कार्यसम्पन्न किया जाता है।

विलियम जिकमण्ड (1988 : 73) ने अन्वेषणात्मक शोध के तीन उद्देश्यों का वर्णन किया है (1) परिस्थिति का निदान करना (2) विकल्पों को छाँटना तथा, (3) नये विचारों की खोज करना।सरन्ताकोस (1988) के अनुसार सम्भाव्यता, सुपरिचितिकरण, नवीन विचार, समस्या के निरुपणतथा परिचालनीकरण के कारण अन्वेषणात्मक शोध प्रारुप को अपनाया जाता है। वास्तव मेंजहोदा तथा अन्य (1959 : 33) ने ठीक ही कहा है कि, "अन्वेषणात्मक अनुसन्धान अनुभव कोप्राप्त करने के लिए आवश्यक है जो कि अधिक निश्चित खोज के लिए उपयुक्त उपकल्पना केनिर्माण में सहायक हो।"

सामाजिक समस्या के अन्तर्निहित कारणों को खोजने के कारण कारण इस प्रारुप में लचीलापनहोना जरुरी है। इसमें तथ्यों की प्रकृति अधिकांशत: गुणात्मक होती है, इसलिए अधिक सेअधिक तथ्यों एवं सूचनाओं को प्राप्त करने की कोशिश की जाती है। तथ्य संकलन की प्रविधिइसकी प्रकृति के अनुरूप ही होनी चाहिए। समय और साधन का भी ध्यान रखना चाहिए।

प्रयोगात्मक शोध प्रारुप –

ऐसा शोध प्रारुप जिसमें अध्ययन समस्या के विश्लेषण हेतु किसी न किसी प्रकार का 'प्रयोग'समाहित हो, प्रयोगात्मक शोध प्रारुप कहलाता है। यह प्रारुप नियंत्रित स्थिति में जैसे किप्रयोगशालाओं में ज्यादा उपयुक्त होता है। सामाजिक अध्ययनों में सामान्यत: प्रयोगशालाओं काप्रयोग नही होता है। उनमें नियंत्रित समूह और अनियंत्रित समूहों के आधार पर प्रयोग कियेजाते हैं। इस प्रकार के प्रारुप का प्रयोग ग्रामीण समाजशास्त्र और विशेषकर कृषि सम्बन्धीअध्ययनों में ज्यादा होता है। वैसे औद्योगिक समाजशास्त्र में वेस्टन इलेक्ट्रिक कम्पनी के हाथोर्नवक्र्स में हुए प्रयोग काफी चर्चित रहे हैं। ग्रामीण प्रयोगात्मक अध्ययनों में प्रयोगों के आधार परयह पता लगाया जाता है कि संचार माध्यमों का क्या प्रभाव पड़ रहा है, योजनाओं का लाभलेने वालों और न लेने वालों की सामाजिक-आर्थिक प्रस्थिति में क्या अन्तर आया है, इत्यादिइत्यादि। इसी प्रकार के बहुत से विषयों/प्रभावों को इस प्रारूप के द्वारा स्पष्ट करने कीकोशिश की जाती है। परिवत्र्यों के बीच कारणात्मक सम्बन्धों का परीक्षण इसके द्वारा प्रामाणिकतरीके से हो पाता है।